शिवभक्त देवराज इन्द्र*

इन्द्र के द्वारा अपने पुत्र विश्वरूप का वध सुनकर महर्षि त्वष्टा अत्यन्त दुःखित और कुपित हुए। उन्होंने परम दारुण तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया और देवों को भयभीत करनेवाला पुत्र माँगा। उनके वरदान से वृत्र नाम का परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। पिता की आज्ञा के अनुसार वृत्र इन्द्र से बदला लेने के लिये घोर तपस्या करने लगा। उसकी घोर तपस्या देखकर इन्द्र को बहुत भय हुआ और उन्होंने दधीचि ऋषि की अस्थियों से बने हुए वज्र से उसे मार डाला।

ब्राह्मण वृत्र को मारकर ज्यों ही इन्द्र चलने लगे, त्यों ही ब्रह्महत्या ने उनका पीछा किया। जहाँ-जहाँ इन्द्र जाते, वहाँ-वहाँ उनके पीछे वह हत्या भी जाती। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नी-गमन एवं विश्वासघात-ये महापातक हैं, इनसे बचना कठिन है।

परम दुःखित देवराज इन्द्रासन और इन्द्राणी का परित्याग कर तप करने के लिये चले। वे अनेक तीर्थ, मन्दिर, समुद्र, नदी और तड़ाग आदि में गये, पर उस हत्या से उन्हें मुक्ति नहीं मिली। अन्त में रेवा-क्षेत्र में पहुँचे और वहाँ परम कारुणिक भगवान् शंकर की आराधना करने लगे। उन्होंने कृच्छ्रचान्द्रायण आदि अनेक दुष्कर व्रत किये। वे ग्रीष्म-ऋतु में पञ्चाग्नि तापते थे, वर्षा में खुले मैदान में बैठे भीगते रहते और शीतकाल में भीगे कपड़े पहने हुए भगवान् की आराधना किया करते। इस प्रकार उग्र तप करते-करते जब दस हजार वर्ष बीत गये, तब भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उसी समय समस्त देवता और ऋषि भी वहाँ आ पहुँचे। तत्पश्चात् बृहस्पति ने देवताओं और ऋषियों से कहा-'आप लोगों की ही आज्ञा से इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था। उसी के कारण ब्रह्महत्या इनका पीछा नहीं छोड़ती। ये सम्पूर्ण जगत् में घूम चुके, पर कहीं भी शान्ति न मिल सकी। हे देवदेव उमापते! इनको ऐसा वर दीजिये जिससे ये इस महापातक से छुटकारा पा जायँ।' तब भगवान् शंकर की आज्ञा से ब्रह्माजी ने उस ब्रह्महत्या को पृथ्वी, नदी, आदि चार लोगों में बाँट दिया। अर्थात् ब्रह्महत्या के लिये दूसरा स्थान नियत किया गया। इस प्रकार उस ब्रह्महत्या से मुक्त करके भगवान् शंकर इन्द्र से बोले - 'मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' इन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि 'हे परमेश्वर! मैं इस तीर्थ में शिवलिङ्ग स्थापित करता हूँ, आप उसमें सदा विराजमान रहें और अपनी आराधना करनेवाले भक्तों को महापातकों से मुक्त किया करें।' इस प्रार्थना को स्वीकार कर भगवान् सदाशिव अन्तर्हित हो गये और देवराज ने विधिविहित रीति से नर्मदा के दक्षिणी तट पर शिवलिङ्ग का संस्थापन किया। इस इन्द्रतीर्थ में स्नान करने तथा इन्द्र के द्वारा संस्थापित 'इन्द्रेश्वर' नामक शिवलिङ्ग की पूजा करने से महापातकी भी समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है और महान् अश्वमेध यज्ञ के सम्पूर्ण फल

---

* स्कंदपुराण तथा अन्य पुराणों में इन्द्र की शिवभक्ति की अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं। अकेले स्कंदपुराण में कई कथाएँ प्राप्त होती हैं। कई बार एक ही कथा के अलग-अलग रूप थोड़ी-थोड़ी भिन्नता के साथ प्राप्त होते हैं।

को प्राप्त कर लेता है। इसका माहात्म्य स्कन्दपुराण में इस प्रकार दिया गया है –

इन्द्रतीर्थे तु यः स्नात्वा तर्पयेत् पितृदेवताः।
महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः।।
इन्द्रतीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत् परमेश्वरम्।
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य पुष्कलं फलमश्नुते।। (स्क. पु. रेवाखण्ड अं. 118/39-40)

स्कंदपुराण की एक दूसरी कथा में कहा गया है कि धर्मारण्यपुर से उत्तर दिशा में देवराज इन्द्र ने भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के लिये तीन सौ वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तप किया। वृत्रासुर के वध से जो पाप लगा था, उसको दूर करने के लिये ही इन्द्र जितेन्द्रिय एवं एकाग्रचित्त होकर भगवान् शंकर की आराधना में लगे थे। उस समय भगवान् शिव उनकी तपस्या से बहुत प्रसन्न हुए और उनके समीप आकर बोले–'देवराज! तुम जो कुछ माँगते हो, उसे मैं दूँगा।' यह सुनकर इन्द्र ने कहा–देवेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो वृत्रासुर के मरने से जो पाप लगा है, उसका नाश कीजिये। भगवान् शिव ने कहा–देवराज! धर्मारण्य में ब्रह्महत्या किसी को पीड़ा नहीं दे सकती। गोहत्या, द्विजहत्या, बालहत्या और स्त्रीहत्या भी मेरे, ब्रह्माजी, विष्णुजी तथा यमराज के वचन से कभी यहाँ प्रवेश नहीं करती। अतः तुम इस तीर्थ में प्रवेश करके स्नान करो।

इन्द्र ने कहा–दयासिन्धो! महेश्वर! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो मेरे नाम से यहाँ स्थापित हों। तब महादेवजी ने 'तथास्तु' कहकर इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार की और लोगों के हित की इच्छा से सबके पापों की शुद्धि के लिये धर्मारण्य में इन्द्रेश्वर नाम से विराजमान हुए। जो मनुष्य सदा भक्तिपूर्वक पुष्प और धूप आदि से भगवान् इन्द्रेश्वर का पूजन करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। जो चतुर्दशी तिथि में अंगोंसहित रुद्र–जप (रुद्र मन्त्रों का जप अथवा शतरुद्री का जप) करता है, वह सब पापों से शुद्धचित्त हो परमपद को प्राप्त होता है।

इस प्रकार इन्द्र को बहुत से वरदान देकर भगवान् शंकर देवता एवं असुरों से सेवित हो अपने धाम को चले गये। तत्पश्चात् इन्द्र भी अपनी पुरी को गये।

इन्द्र की शिवभक्ति से संबंधित स्कंदपुराण की एक अन्य कथा इस प्रकार है। प्राचीन काल में स्वायम्भुव मनवन्तर के प्रारंभ समय की बात है, हिरण्याक्ष नाम से प्रसिद्ध एक महातेजस्वी दैत्य था। महाबली होने के साथ–साथ वह तप एवं पराक्रम से भी सम्पन्न था। हिरण्याक्ष आदि दैत्यों ने इन्द्र को स्वर्ग से निकाल दिया और स्वयं ही समस्त त्रिलोकी पर अधिकार जमा लिया। राज्यरहित इन्द्र ने देवताओंसहित गंगाद्वार में आकर तपस्या प्रारंभ की। एक दिन भगवान् शिव महिष का रूप धारण कर तीव्र तपस्या करते हुए इन्द्र के सम्मुख पृथ्वीतल से निकले और बोले–'सुरश्रेष्ठ! शीघ्र बोलो, मैं इस रूप में, सम्पूर्ण दैत्यों में से किन–किन को जल में विदीर्ण कर डालूँ (**के दारयामि**)? इन्द्र बोले–प्रभो हिरण्याक्ष, सुबाहु, वक्त्रकन्धर, त्रिशृंग तथा लोहिताक्ष–इन पाँचों का वध

कीजिये। इनके मरने पर निश्चय ही सब दैत्य मरे हुए के ही तुल्य हो जायँगे, अतः अन्यान्य दीन-हीन दैत्यों का नाश करने से क्या लाभ है?

इन्द्र के ऐसा कहने पर भगवान् शिव तुरंत उस स्थान पर गये, जहाँ दानव हिरण्याक्ष विद्यमान था। उस भयानक भैंसे को देखकर सब दानव सब ओर से उस पर पत्थरों एवं डंडों की बौछार करने लगे। दैत्यों और उनके प्रहारों की तनिक भी परवा न करके भगवान् शिव ने चार मन्त्रियोंसहित हिरण्याक्ष को खिलवाड़ में ही एक गहरा धक्का दिया। तब वह दैत्य हथियार लेकर ज्यों-ही उनके सामने दौड़ा, त्यों-ही सींग से उसको विदीर्ण करके महादेवजी ने यमलोक भेज दिया। हिरण्याक्ष को मारने के बाद उन्होंने सुबाहु आदि सचिवों को भी मृत्यु के घाट उतार दिया। निशाना साधकर प्रहार करनेवाले उन दैत्यों द्वारा यत्नपूर्वक चलाया हुआ कोई भी अस्त्र-शस्त्र महादेवजी के शरीर पर नहीं लगता था। इस प्रकार उन पाँचों प्रधान दैत्यों का वध करके भगवान् शिव पुनः उसी स्थान पर लौट आये, जहाँ इन्द्र तपस्या करते थे। वहाँ आकर वे इन्द्र से बोले-'देवराज! तुमने जिन पाँच दानवों के वध के लिये कहा था, उन सबको मैंने मार डाला है; अब तुम पुनः त्रिलोकी का राज्य करो। देवेश! मुझसे दूसरा कोई भी मनोवांछित वर माँगना चाहो तो माँगो।'

तब इन्द्र ने कहा-भगवन् आप त्रिलोकी की रक्षा, धर्म-स्थापना तथा कल्याण के लिये इसी रूप से यहाँ निवास कीजिये। भगवान् शिव ने कहा-शक्र! यह रूप तो मैंने उस दैत्य का वध करने के लिये ही धारण किया था। अब तुम्हारे अनुरोधपूर्ण वचन से मैं त्रिभुवन की रक्षा, धर्म की स्थापना तथा लोक-कल्याण के लिये यहीं निवास करूँगा। ऐसा कहकर भगवान् शिव ने वहाँ एक सुन्दर कुण्ड प्रकट किया, जो शुद्ध, स्वच्छ तथा सुस्वादु जल से भरा हुआ था। तत्पश्चात् इन्द्र से कहा-'जो कोई भी मेरा दर्शन करके पवित्र हो इस कुण्ड का दर्शन करेगा तथा दायें-बायें दोनों हाथों की अंजलि से तीन बार इस कुण्ड का जल पीयेगा, वह तीन कुल के पितरों को तार देगा। बायें हाथ से जल पीकर मातृपक्ष का दायें हाथ से जल ग्रहण करने पर पिता-पितामह आदि का तथा दोनों हाथों से जल पीकर अपने आपका उद्धार करेगा।'

इन्द्र बोले-वृषभवाहन! मैं प्रतिदिन स्वर्ग से आकर यहाँ आपकी पूजा करूँगा और इस कुण्ड का जल भी पीऊँगा। आपने महिषरूप में यहाँ आकर 'के दारयामि-जल में किनको विदीर्ण करूँ' ऐसा कहा था, इसलिये आप 'केदार' नाम से प्रसिद्ध होंगे। भगवान् शिव ने कहा-इन्द्र! यदि ऐसा करोगे तब तुम्हें दैत्यों से भय नहीं प्राप्त होगा। तदनन्तर इन्द्र ने भगवान् शिव के लिये सुन्दर मन्दिर का निर्माण किया, जो देखने में बड़ा सुन्दर एवं मनोरम था। तत्पश्चात् उन्हें प्रणाम करके उनकी अनुमति ले वे मेरुगिरि के शिखर पर विराजमान स्वर्गलोक में चले गये। तब से प्रतिदिन नियमपूर्वक आकर वे देवेश्वर शिव की पूजा करते हैं और उस कुण्ड का तीन बार जल पीकर स्वर्गलोक को लौट जाते हैं।

एक दिन की बात है; जब इन्द्र पूजा के लिये आये तब देखते हैं, सारा गिरिशिखर बर्फ से ढक गया है। साथ ही भगवान् केदार का अर्चा-विग्रह, उनका मन्दिर तथा वह कुण्ड-सभी हिमाच्छादित हो गये हैं। तब वे दुखी हो भक्तिपूर्वक उस दिशा को प्रणाम करके इन्द्रलोक चले गये। इस प्रकार चार महीनेतक वे प्रतिदिन आते और शिवजी को न देखकर उस दिशा को प्रणाम करके लौट जाते रहे। फिर जब गरमी का समय आया, तब उन्हें भगवान् शिव के उस विग्रह का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। फिर तो उन्होंने बड़े समारोह से चौमासे की पूजा सम्पन्न की और उनके आगे गीत-वाद्य आदि का आयोजन किया। तब भगवान् शिव ने इन्द्र को प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा-'देवेश! मैं तुम्हारी अनन्य भक्ति से सन्तुष्ट हूँ; इसलिये तुम्हारे हृदय में जो अभिलाषा हो, उसके अनुसार वर माँगो।'

इन्द्र ने कहा-भगवन्! आपके प्रसाद से मुझे उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त है, अतः अब वैसी कोई कामना नहीं है। सुरेश्वर! यह पर्वत मीनगत सूर्य (चैत्रमास) से लेकर आठ मासतक बड़ा मनोरम रहता है। फिर वृश्चिक की संक्रांति से लेकर कुम्भ की संक्रांतितक यह मेरे लिये भी अगम्य हो जाता है, तब मनुष्य आदि साधारण जीवों की तो बात ही क्या है। अतः इन चार महीनोंतक आप इसी रूप में कहीं अन्यत्र मर्त्यलोक या पाताल में निवास करें, जिससे मेरे द्वारा नित्य-पूजन की प्रतिज्ञा में कोई बाधा न हो। तब भगवान् शिव बोले-इन्द्र! आनर्तदेश में हमारा हाटकेश्वरक्षेत्र विद्यमान है। वहाँ मैं वृश्चिक की संक्रांति से लेकर कुम्भराशि में सूर्य के रहने समयतक सदा निवास किया करूँगा। अतः वहाँ मेरा मन्दिर बनाकर उसमें मेरे स्वरूप की प्रतिष्ठा करके मेरी यथोचित पूजा करते रहो। तुम्हारे लिये मैं अपना तेज उस शिवलिंग में स्थापित कर दूँगा।

शिवजी का यह वचन सुनकर इन्द्र ने हाटकेश्वरक्षेत्र में मन्दिर बनाया और उसमें शिवजी के केदारस्वरूप को स्थापित करके निर्मल जल से भरे हुए एक कुण्ड का भी निर्माण किया। फिर उस कुण्ड में स्नान करके तीन बार जल पीया। इस प्रकार इन्द्र से आराधित होकर भगवान् केदार इस क्षेत्र में पधारे। जो मनुष्य प्रतिदिन सर्दी के चार महीनों में उनकी वहाँ आराधना करता है, वह उनके कल्याणमय स्वरूप को प्राप्त होता है।

(उपर्युक्त कथाएँ गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के संक्षिप्त स्कंदपुराणांक तथा शिवोपासनांक से ली गयी हैं।)

❀❀❀❀❀❀

(अपने मनोरंजन या फायदे के लिये) पशुओं, पक्षियों तथा व्याघ्रों को परस्पर न लड़ायें।

परस्परंपशून्व्याघ्रान्पक्षिणोनचयोधयेत्।।

(पद्म महापु. स्वर्गखण्ड 55/82)